• श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः •

सर्वे पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर

वर्ष १४ | गौराब्द ४८२, मास—दामोदर ११, वार—कारणोदशायी
बृहस्पतिवार, ३० आश्विन, सम्वत् २०२५, १७ अक्टूबर १९६८ | संख्या ५

श्रीराधिकाष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रम्

[श्रीशील-रघुनाथदास गोस्वामि-विरचितम्]

मधुमङ्गलनर्मोक्ति जनितस्मितचन्द्रिका ।
पौर्णमासीबहिः खेलत् प्राणपञ्जरसारिका ॥१३॥

३८. मधुमङ्गलनर्मोक्तिजनितस्मितचन्द्रिका अर्थात् मधुमङ्गलके नर्मवाक्य द्वारा जिनका ईषत् हास्यरूप ज्योत्स्ना प्रकाशित होती है, ३९. पौर्णमासीबहिः खेलत् प्राण-पञ्जरसारिका अर्थात् जिनके प्राणरूपी पिंजड़ेमें बद्ध सारिका पौर्णमासीदेवीके बाहरी प्रदेशमें खेल रही है ॥१३॥

स्वगणाद्वैत जीवातुः स्वीयाहङ्कारवर्द्धिनी ।
स्वगणोपेन्द्रपादाब्जस्पर्श लम्भनहर्षिणी ॥१४॥

४०. स्वगणाद्वैत जीवातु अर्थात् जो अपने सखीवर्गकी जीवनौषधि स्वरूपा हैं, ४१. स्वीयाहङ्कारवर्द्धिनी अर्थात् जो अपने आत्मीयगणोंके अहङ्कारको बढ़ानेवाली हैं, ४२. स्वगणोपेन्द्रपादाब्जस्पर्शलंभनहर्षिणी अर्थात् अपने सखीवर्गके साथ श्रीकृष्णके पादपद्मों को प्राप्त कर जिन्हें अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है ॥१४॥

स्वीय वृन्दावनोद्यानपालिकी कृतवृन्दका ।
ज्ञात वृन्दाटवी सर्वलतातरु मृगद्विजा ॥१५॥

४३. स्वीय वृन्दावनोद्यानपालिकीकृतवृन्दका अर्थात् जिन्होंने अपने वृन्दावनमें श्रीमती वृन्दादेवीको पालिकाके रूपमें स्थापित किया है, ४४. ज्ञातवृन्दाटवी सर्वलतातरु-मृगद्विजा अर्थात् वृन्दावनमें स्थित सारे तरुलता मृग पक्षियोंको जो जानती हैं ॥१५॥

ईषच्चन्दन संघृष्ट नवकाश्मीरदेहभाः ।
जवापुष्प प्रभाहारि पट्टचीनारुणाम्बरा ॥१६॥

४५. ईषत् चन्दनसंघृष्ट नवकाश्मीरदेहभाः अर्थात् जिनकी शरीर-कान्ति ईषत् चन्दन जल मिश्रित कुङ्कुमकी तरह है, ४६. जवापुष्प प्रभाहारि पट्टचीनारुणाम्बरा अर्थात् जिनका सूक्ष्म पट्टवस्त्र जवापुष्पके सौन्दर्यको भी हरण कर रहा है ॥१६॥

चरणाब्जतलज्योतिवरुणीकृतभूतला ।
हरिचित्तचमत्कारि चारु नूपुर निश्वना ॥१७॥

४७. चरणाब्जतलज्योतिवरुणीकृतभूतला अर्थात् जिनके पादपद्मोंकी ज्योति द्वारा भूतल रक्त वर्ण हो गया है, ४८. हरिचित्तचमत्कारी चारुनूपुर निःस्वना अर्थात् मनोहर नूपुर ध्वनि द्वारा जो कृष्णके चित्तको भी हरण कर रही हैं ॥१७॥

कृष्णश्रान्तिहरश्रोणिपीठवल्गितघन्टिका ।
कृष्ण सर्वस्वपीनोद्यत् कुचांचन्मणिमालिका ॥१८॥

४९. कृष्णश्रान्तिहरश्रोणीपीठवल्गितघन्टिका अर्थात् जिनके नितम्ब पीठस्थ घन्टिका शब्दायमान होकर श्रीकृष्णके परिश्रमको दूर कर रही है, ५०, कृष्णसर्वस्व-पीनोद्यत् कुचाञ्चन्मणिमालिका अर्थात् कृष्णकी परम सम्पत्तिरूप पीन अथच उन्नत स्तन-युगलके ऊपर जिनकी मणिमाला झूल रही है ॥१८॥

नानारत्नोल्लसच्छंखचूड़ा चारुभुजद्वया ।
स्यमन्तकमणि भ्राजन्मणिबन्धातिबन्धुरा ॥१९॥

५१. नानारत्नोल्लसच्छंख चूड़ाचारु भुजद्वया अर्थात् नाना प्रकारके रत्नों द्वारा सुशोभित शंखचूड़ी अर्थात् शंखकी चूड़ियों द्वारा जिनकी दोनों भुजाएँ अत्यन्त शोभायमान हो रही हैं, ५२, स्यमन्तकमणिभ्राजन्मणिबन्धातिबन्धुरा अर्थात् जिनका प्रकोष्ठ प्रदेश स्यमन्तकमणि द्वारा निम्नोन्नत मालूम पड़ता है ॥१९॥

सुवर्ण दर्पणज्योतिरुल्लंघि मुखमंडला ।
पक्व दाडिमबीजाभदम्भाकृष्टाघभिच्छुका ॥२०॥

५३. सुवर्ण दर्पणज्योतिरुल्लंघि मुखमंडला अर्थात् जिनके मुखमंडलने अपनी प्रभा द्वारा स्वर्ण निर्मित दर्पणकी ज्योतिको भी पराजित किया है, ५४. पक्व दाड़िमबीजाभदम्भाकृष्टाघभिच्छुका अर्थात् सुपक्व दाडिम्ब बीजके समान सुन्दर अपनी दन्तश्रेणी द्वारा जिन्होंने श्रीकृष्णरूपी शुकपक्षीको आकृष्ट किया है ॥२०॥

अब्जरागादि सृष्टाब्जकलिका कर्णभूषणा ।
सौभाग्य कज्जलाङ्काक्त नेत्रनिन्दितखञ्जना ॥२१॥

५५. अब्जरागादि सृष्टाब्जकलिका कर्णभूषणा अर्थात् पद्मरागादि मणि विरचित पद्मकलिका द्वारा जिनका कर्णभूषण बनाया गया है, ५६. सौभाग्य कज्जलाङ्काक्त नेत्रनिन्दितखंजना अर्थात् जिनके सौभाग्यसूचक कज्जलचिह्न रंजित दोनों नेत्र खञ्जन (कंचन) पक्षी की शोभाका भी तिरस्कार कर रहे हैं ॥२१॥

सुवृत्तमौक्तिकामुक्त नासिका तिलपुष्पिका ।
सुचारु नवकस्तूरीतिलकाचितभालका ॥२२॥

५७. सुवृत्तमौक्तिकामुक्त नासिका तिलपुष्पिका अर्थात् जिनकी नासिकारूप तिल पुष्प सुवर्त्तुल (सुन्दर आकारवाले) मुक्ताओं द्वारा सुशोभित हैं, ५८. सुचारुनवकस्तूरीतिलकाचितभालका अर्थात् जिनका ललाट प्रदेश अत्यन्त सुन्दर और नवीन कस्तूरी तिलक द्वारा सुशोभित हो रहा है ॥२२॥

दिव्यवेणी विनिर्धूत केकिपिञ्छवरस्तुतिः ।
नेत्रान्तशरविध्वंसीकृतचाणूरजिद्धृतिः ॥२३॥

दिव्यवेणी विनिर्धूत केकिपिंजवरस्तुति अर्थात् जिन राधिकाने अपने मनोहर केशपाश द्वारा मोरपंखकी उत्तम-कीर्त्तिका भी तिरस्कार किया है, ६०. नेत्रान्तशर विध्वंसीकृत चाणूरजिद्धृति अर्थात् जिन्होंने अपने कटाक्षपात द्वारा चाणूरको जय करनेवाले श्रीकृष्णको भी अधैर्य कर दिया है ॥२३॥

स्फुरत्कैशोरतारुण्य सन्धिबन्धुरविग्रहा ।
माधवोल्लासकोन्मत्त पिकोरुमधुरस्वरा ॥२४॥

६१. स्फुरत्कैशोरतारुण्य सन्धिबन्धुरविग्रहा अर्थात् कैशोर एवं तारुण्यकी शोभा मिलन द्वारा जिनका शरीर अत्यन्त मनोहर है, ६२. माधवोल्लासकोन्मत्त पिकोरुमधुर-स्वरा अर्थात् श्रीकृष्ण सर्वदा जिनको उल्लास प्रदान कर रहे हैं और ६३. उन्मत्त कोकिलकी कण्ठध्वनि की तरह जिनका स्वर अत्यन्त मधुर से भी मधुर है ॥२४॥

प्राणायुतशतश्रेष्ठ माधवोत्कीर्त्तिलम्पटा ।
कृष्णापांग तरंगोद्यत्स्मित पीयूषबुद्बुदा ॥२५॥

६४. प्राणायुतशतप्रेष्ठ माधवोत्कीर्त्तिलम्पटा अर्थात् कोटि-कोटि संख्यावाले प्राणों की अपेक्षा भी प्रियतम श्रीकृष्णकी कीर्त्ति गानेमें जिनकी अत्यन्त आसक्ति है, ६५. कृष्णापाङ्ग तरङ्गोद्यत्स्मित पीयूषबुद्बुदा अर्थात् श्रीकृष्ण की अपाङ्गतरङ्गमें जिनका हास्यामृतरूप बुद्बुद् अत्यन्त शोभा पा रहा है ॥२५॥

(क्रमशः)

गौड़ीयोंका वेष

['गौड़ीय' किसे कहते हैं और गौड़ीय वैष्णवोंका क्या वेष है, इस सम्बन्धमें अधिकांश व्यक्ति प्रश्न किया करते हैं। उक्त लेखमें इस विषयकी आलोचना करते हुए वैष्णवताके वास्तविक स्वरूपका विचार किया गया है।]

—सम्पादक

एक व्यक्तिने मुझसे यह प्रश्न किया है कि गौड़ीय वैष्णवका वेष क्या है ? 'गौड़ीय वैष्णव' इन दो शब्दोंमें से पहले 'गौड़ीय' शब्दका विचार किया जाय। 'गौड़ीय' कहनेसे साधारणतः गौड़ देशवासीको समझना चाहिए। भारतवर्षके उत्तर में, हिमालयके दक्षिणमें, विन्ध्याचल पर्वतके उत्तर भागमें स्थित प्रदेशको 'आर्यावर्त्त' कहा जाता है। उसी आर्यावर्त्तको दूसरी भाषामें पंच गौड़ कहा जाता है। विन्ध्याचल पर्वतके दक्षिण में स्थित भारतवर्षके प्रदेशको द्रविड़-देश या पंच-द्रविड़ कहा जाता है। पंचगौड़वासी व्यक्ति सभी ही आर्यावर्त्तवासी या गौड़ीय हैं। मनुका कहना है कि पूर्व समुद्रसे पश्चिम समुद्र तक का भूभाग आर्यावर्त्त है। साधारणतः गौड़देश कहने से कान्यकुब्ज, सारस्वत, मध्यगौड़, मैथिल और उत्कल देश को समझना चाहिए। कुछ समयसे आर्यावर्त्तके पूर्व प्रदेशको गौड़देश कहनेकी प्रथा चल पड़ी है। 'श्रीचैतन्यचरितामृत' नामक सर्व-प्रसिद्ध गौड़ीय भाषाके ग्रन्थमें श्रीनवद्वीप नगर को ही गौड़देशका प्रधान स्थान कहकर उल्लेख किया गया है। यद्यपि कोई-कोई व्यक्ति मालदह, कानसुनिया आदि स्थानोंको गौड़ कहा करते हैं, तथापि नवद्वीप नगरको गौड़देशकी केन्द्रभूमि कहकर आदिम बंगीय साहित्यमें उल्लेख किया गया है। श्रीधाम मायापुरमें ही मौलाना सिराजुद्दिनका गृह या चाँद काजीका घर था। इसलिए गौड़देशकी राजधानी होनेके कारण नवद्वीप नगरमें आविर्भूत श्रीगौरसुन्दर या श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुको गौड़देशवासी व्यक्ति उनके एकमात्र उपास्यके रूपमें जानते हैं। यह विचार ऐतिहासिक दृष्टिसे किया गया है, अब पारमार्थिक दृष्टिसे विचार किया जाय।

जो व्यक्ति आर्यावर्त्त निवासी न होकर भी श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणाश्रित हैं, वे लोग भी अपनेको 'गौड़ीय' कहकर परिचय प्रदान करते हैं। श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने अपने अनुगत दास श्रीदामोदर स्वरूपको गौड़ीय वैष्णवों का मालिक बतलाया है। अतएव 'गौड़ीय' शब्द द्वारा साधारणतः श्रीश्रीगौराङ्ग महाप्रभुके चरणाश्रित व्यक्तिको ही जाना जाता है। इसलिए 'गौड़ीय' के योगरूढ़ अर्थमें गौड़ीय वैष्णव को ही लक्ष्य करता है, जैसे 'पङ्कज' कहनेसे पद्म या कमल को ही समझा जाता है।

जीवमात्र ही स्वरूपतः कृष्णका दास या वैष्णव है। वैष्णवोंका एकमात्र कर्त्तव्य हरिसेवा है। जो सभी वैष्णव लोग अपने आत्म-स्वरूपमें

स्थित होकर हरिसेवा करते हैं, उन्हें ही वैष्णव कहा जाता है; अन्यान्य जीव वैष्णव होने पर भी अपने स्वरूपको भूले हुए हैं, अतएव उन्हें अवैष्णव कहते हैं। पृथिवीके जीवमात्र ही वैष्णव हैं। भारत पृथिवीके अन्तर्गत है, उस भारतके विभिन्न प्रदेशोंके पारमार्थिक व्यक्तियोंसे गौड़देशीय पारमार्थिक व्यक्तियोंकी विशेषताका विचार करनेसे गौड़ीय वैष्णव कहनेपर श्रीश्री-गौराङ्ग महाप्रभुके चरणाश्रित व्यक्तियोंको ही समझा जाता है। जो सभी वैष्णव लोग भगवत् सेवारहित होकर अवैष्णव कहे जाते हैं अथवा अपनेको वैष्णवके रूपमें नहीं जानते, वे ही अपने को अन्यान्य धर्मावलम्बी कहकर अपना परिचय अवैष्णवके रूपमें देते हैं। श्री पूज्यपाद सनातन गोस्वामी विरचित श्रीहरिभक्तिविलासमें कहा गया है —

"गृहीत विष्णुदीक्षाको विष्णुपूजापरो नरः।
वैष्णवोऽभिहितोऽभिज्ञैरितरोऽस्मादवैष्णवः॥"

जिस प्रकार शौक्र विधान द्वारा सावित्र्य संस्कारकी बात कुछ कल्प शास्त्रोंमें कही गयी है, और उन कल्पशास्त्रोंके विधानानुसार संस्कारादि सम्पन्न व्यक्ति को वह नाम प्रदान किया जाता है, उसी प्रकार दीक्षा संस्कार द्वारा अवैध विधानमें शूद्रता और वैध विधानमें द्विजत्वरूप दोनों वर्ण सिद्ध होते हैं। "तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्।" कर्मकाण्डमें अत्यन्त आसक्त वेदशाखाके अवलम्बनकारी ब्राह्मण लोग शौक्र पथके आधार पर जिस प्रकारसे वर्ण-निर्णय करते हैं, वह बहुत युक्तियुक्त है। भारत-वर्षमें अनेक ऐसे ऋषि हुए हैं जो आचारगत परिचय द्वारा परिचित हैं। उन ऋषियोंके शौक्र अधस्तनगण ही शौक्रपद्धतिके द्वारा परिचित वर्णके अन्तर्गत हैं। महाभारत और भारतीय इतिहास-पुराणादिमें आचारगत वर्ण-निर्णय की बात विस्तारपूर्वक आलोचना की गई है। वैसे आचारगत परिचय का प्रचलन शौक्र-पद्धति का मूल है। शौक्र-सावित्र्य पद्धतिके अनुसार निर्द्धारित वर्ण कई समय परिवर्त्तित होते देखे गये हैं। जहाँ मौलिक सनातन धर्म विकृत होकर धर्माभासमें परिणत हुआ है, वहीं तात्पर्यरहित अज्ञानता प्रत्यक्ष वर्त्तमान है। साधारण व्यक्तियों की संख्या महाजनोंकी संख्याकी अपेक्षा अत्यन्त अधिक है। जनसमूहकी अज्ञानता से उत्पन्न धारणाएँ कई समय विचारको अतिक्रम करती हैं। इसलिए सत्य सर्वदा ही आवृत रहेगा ऐसी बात नहीं है। कुहरेसे सूर्यकिरण या मेघों के द्वारा सूर्यको ढका हुआ देखने पर भी अथवा बाहरी दृष्टिसे सूर्यके किरण नहीं दीखने पर भी सूर्य एकदम विलुप्त नहीं होते। उसी प्रकार सत्य की मर्यादा कलियुगमें बहुत ही क्षीण होने पर भी जगतसे सत्य एकदम विलुप्त नहीं हुआ है। दुःखके पश्चात् सुख और सुखके पश्चात् दुःख— ये सुख और दुःखके परिमाणगत भेदमात्र हैं। वर्ण की ऊँच-नीच अवस्था गुणकर्मके परिमाण के अनुसार निश्चित की जाती है।

दृश्यमान जगत या कर्मभूमि भारतवर्षमें

गुणकर्म भेदसे जो ऊँच-नीच वर्ण निर्णय किये गये हैं, वे गुण और कर्मके परिमाणके अनुसार सिद्ध होते हैं। परमार्थहीन निरीश्वर जगतके लोग गुण और कर्मानुसारसे वर्णका निरूपण नहीं करते हैं। सेश्वर नीतिपरायण व्यक्ति गुण और कर्मके अनुसार वर्णनिरूपणके पक्षपाती हैं। विष्णु भक्तिरहित कर्मकाण्डीय विचारमें ऐकान्तिक विष्णु भक्तिका अभाव है। हंसजाति के साथ भेदभाव रखकर विष्णुविद्वेषी लोग जिस अवैष्णव-समाजकी स्थापना करते हैं, उसमें वर्ण विभाग वर्त्तमान हैं। 'विष्णु'के पर्यायवाची शब्दरूप 'ब्रह्म' शब्दके विचारका अवलम्बन कर ब्रह्मज्ञ व्यक्ति अपने ब्राह्मणत्वकी स्थापना करते हैं। योगी लोग वैष्णव विचारके प्रतिपक्षी होकर जीवात्मा और परमात्माके सान्निध्यका प्रयास करते हुए अपनेको भक्तिहीन योगीके रूप परिचित कराते हैं। भगवद् भक्त लोग उनके साथ विरोध न कर उनको भी प्राकृत विचार-युक्त कपट-वैष्णवोंके समान समझते हैं! जिस-जिस समय वैष्णवोंके साथ अवैष्णव ब्राह्मणों का विरोध उपस्थित हुआ, उस-उस समयके भारतीय साहित्य की आलोचना करने पर यह जाना जाता है कि अवैष्णव ब्राह्मण लोगोंने वैष्णवोंसे अपनेको अलग समझकर अपने-अपने भक्तिविरोधी कर्मकाण्डी मतका प्रचार किया था। श्रीरामानुजाचार्यजीके परमगुरु श्रीआलवन्दारुजीने ब्रह्मसूत्र--भाष्यमें इन अवैष्णव ब्राह्मणों की कुविचार--प्रणालीका वर्णन किया है। परम पण्डित समझे जानेवाले अप्पय दीक्षित आदि अवैष्णव ब्राह्मण लोगोंने यामुनाचार्यजी के विरोधमें नाना प्रकारके अनावश्यक बातोंकी उत्थापना की थी। जो व्यक्ति वर्ण-विचारके विधि नियमोंकी भली प्रकारसे आलोचना करना चाहते हैं, वे श्रीमद्भागवतके पंचम स्कन्ध, एकादश स्कन्ध, नारद--पंचरात्र, सात्वत-संहिता समूह, 'आगमप्रामाण्य', संस्कार-चन्द्रिका, संस्कार-दीपिका, वृद्धमनु आदि मूल और तदनुगत ग्रन्थसमूह पाठ करें। ऐसा करने पर उनकी संकीर्ण साम्प्रदायिक भावना दूर हो जायगी और वे दैक्ष्य-सावित्र्य वर्णविधानकी यथार्थता की उपलब्धि कर सकेंगे।

जिन लोगोंने विभिन्न सम्प्रदायोंके वेदान्त-भाष्योंकी आलोचना की है, वे लोग भी यह जान सकेंगे कि भारतवर्षमें मध्ययुगमें नाना प्रकारसे आचारगत ब्राह्मणता का प्रबल प्रचार हुआ था। वर्त्तमान शोक वर्ण विधान ऐसे अनुष्ठान की परिणति है या नहीं—यह विचार करना पड़ेगा। उसके विरुद्धमें हम लोग क्या-क्या प्रमाण दिखला सकते हैं?

श्रीमद्भागवतका कहना है— "सर्वेषां मदुपासनम्" अर्थात् जिस किसी भी वर्णका व्यक्ति क्यों न हो, वह भगवदुपासना करनेका अधिकारी है। महाराज अम्बरीष बाहरी दृष्टिसे क्षत्रिय जैसे जान पड़ने पर भी दुर्वासा जैसे ऋषि उनके ब्राह्मणत्वको न जाननेके कारण कितने बड़े कष्ट में पड़ गये थे, यह भारतवर्षके इतिहासमें स्वर्णाक्षरमें लिखा गया है। बाहरी जगतमें अक्षज या

प्रत्यक्ष ज्ञानियोंके लिए वर्ण-चिह्न और आश्रम-चिह्नकी व्यवस्था उपयुक्त ही है। तब कई समय ज्ञानी लोग बाहरी चिह्नोंको देखकर भ्रममें पड़ जाते हैं। जिस प्रकारसे रक्त वर्णवाले मेघोंको देखकर गाय आदि पशु डर जाते हैं, उसी प्रकार वे लोग भी वैष्णवोंके बाहरी चिह्नोंको देखकर व्यतिव्यस्त हो जाते हैं। आन्तरिक भावनाका अनुशीलन न करनेसे ऐसी ही विडम्बना होना अवश्यंभावी है।

गौड़ीय वैष्णव परमहंस भी हो सकते हैं; तब उनके वेषको देखकर कोई उन्हें वैष्णव हैं या अवैष्णव हैं--यह निश्चय नहीं कर सकते। श्री सनातन गोस्वामी, श्रीरूप गोस्वामी, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी आदियोंके वेषमें कोई वर्णाश्रम चिह्न नहीं था; किन्तु श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती गोस्वामी को काषाय वस्त्र पहने और त्रिदण्ड धारण करते देखा जाता है। श्रीपरमानन्द पुरी, श्रीईश्वर पुरी आदि वैष्णवोंके वेषमें एकदण्ड और काषाय वस्त्र देखे जाते हैं, त्रिदण्डी या एकदण्डी हो, या भले ही निर्दण्डी क्यों नहीं हो, सभी व्यक्ति गौड़ीय वैष्णव बन सकते हैं। वे कर्म-त्रिदण्ड, ज्ञान--त्रिदण्ड और भक्ति-निर्दण्ड आदि आश्रमचिह्नोंका परित्याग करनेका वेष ले सकते हैं। वर्णाश्रममें स्थित गौड़ीय वैष्णवों का अभाव भी नहीं है। वे लोग वर्णचिह्न, आश्रम चिह्न आदि रखकर भी गौड़ीय वैष्णव हो सकते हैं और उन-उन चिह्नोंको धारण कर वर्णाश्रममें स्थित होनेके लिए कोई उन्हें बाधा भी नहीं दे सकता। काषाय-वस्त्र माहात्म्य, त्रिदण्ड माहात्म्य आदिका शास्त्रोंमें प्रचुर वर्णन पाया जाता है।

चिह्न-लक्षण द्वारा या वेष-ग्रहण रीतिका दर्शन कर कोई गौड़ीय वैष्णव है या नहीं, यह निश्चय नहीं किया जा सकता। हरिभजनमें निष्कपटता ही वैष्णव-परिचयका एकमात्र आधार है। जो व्यक्ति कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड आदिको वैष्णवोंके ऊपर जबर्दस्ती लादने जाकर वैष्णवोंको केवलमात्र कर्मी या ज्ञानी समझते हैं, वे सुसङ्गत विचार करनेमें असमर्थ हैं और वे वैष्णवापराधी हैं। कौपीन--बहिर्वासादि दिखला कर जो व्यक्ति वैष्णवताके विरुद्ध आचरण करते हैं और भजनका सन्धान न रखकर 'नवमीमें लौकी सेवन करना मना है' आदि विधियोंको ही वैष्णवाचार कहकर प्रचार करने में व्यस्त हैं, वे श्रीमद्भागवतके अनुसार त्रिधातुक कुणप (कफ़, वात, पित्तरूपी तीन धातुओंसे निर्मित जड़ शरीर) को लेकर ही मदमत्त हैं। इसलिए वैष्णव-वेष निश्चय करने जाकर लोकदृष्टिका अनुगमन करते हुए वे लोग वैष्णवको पहचाननेमें असमर्थ हैं।

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(पारमार्थिक साहित्य)

१—गीतगोविन्द किस श्रेणीका काव्य है ? इस ग्रन्थकी आलोचना करनेका अधिकार किन व्यक्तियोंको है ?

"गीतगोविन्दमें सर्वत्र ही परब्रह्म श्रीकृष्णकी अप्राकृत लीलाका वर्णन किया गया है। यह विशेष कर उज्ज्वलरसरूप शृङ्गार रसमय काव्य है। जगतमें यह काव्य-ग्रन्थ अद्वितीय है। साधारण समालोचक लोग प्राकृत रसके बिना अप्राकृत शृङ्गारका अनुभव नहीं कर सकते; अतएव गीतगोविन्द सम्बन्धी उन लोगोंकी समालोचना आदि कदापि सर्वाङ्गसुन्दर नहीं हो सकतीं। जयदेवजीने उन सभी समालोचकोंको अपने ग्रन्थकी समालोचना करनेके लिए आदेश नहीं दिया है; बल्कि उन्होंने उन लोगोंको यह ग्रन्थ पाठ करनेके लिए निषेध किया है। जो व्यक्ति अप्राकृत व्रजरसको नहीं जानते, उनके लिए जयदेवजीके गीतगोविन्दकी आलोचना करना निर्लज्जताका परिचयमात्र है।"

—'समालोचना' (श्रीगीतगोविन्द), स. तो. ७।२

२—'श्रीउज्ज्वलनीलमणि' ग्रन्थका मर्म क्या है ? श्रीकृष्णका अप्राकृत तत्त्व क्या प्रकृति के अधीन है ?

" 'श्रीउज्ज्वलनीलमणि' ग्रन्थका मर्म अत्यन्त गूढ़ और गोपनीय है। श्रीकृष्ण लीला सर्वत्र और सर्वदा ही अप्राकृत है। प्रपञ्चमें प्रकट होने पर भी इसमें प्रापंचिकताका गन्धमात्र भी नहीं है। जीवोंके कल्याणके लिये ही यह अति पवित्र चिन्मयी रस-लीला सर्वोपरि स्थित गोलोकसे श्रीकृष्णकी अचिन्त्य शक्तिद्वारा इस जड़जगतमें चिन्मय व्रजधामके साथ अवतरित हुई है। मनुष्योंके जड़ शरीरगत जिस स्त्री-पुरुष सङ्गका हम लोग जगतमें परिचय पाते हैं, वह अत्यन्त घृणित और तुच्छ है। चित् शरीरसे जीवको जिस गोपी देहकी प्राप्ति होती है और कृष्ण-सङ्ग प्राप्त होता है वह प्रकृतिगत चौबीस तत्त्वोंसे अतीत है।"

—'समालोचना,' स. तो. १०।६

३—षट्सन्दर्भ ग्रन्थ भागवती सम्प्रदाय (भक्त सम्प्रदाय) का परमादरणीय वस्तु क्यों है ?

"कलियुगपावन स्वभजन-विभजन-प्रयोजनावतार श्रीश्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके चरणाश्रित विश्ववैष्णवराजसभा द्वारा पूजित श्रीरूप-सनातन गोस्वामीके आदेशानुसार श्रीजीव गोस्वामीजीने इस श्रीभागवत-सन्दर्भकी रचना की है। ग्रन्थका माहात्म्य वर्णन करना हमारे सामर्थ्यके बाहर है। इस ग्रन्थके छः विभाग हैं—

१—तत्त्व-सन्दर्भ, २—भगवत् - सन्दर्भ, ३—परमात्म-सन्दर्भ, ४—श्रीकृष्ण-सन्दर्भ, ५—भक्ति-सन्दर्भ और ६—प्रीति-सन्दर्भ। वैष्णव-सम्प्रदाय का सर्वाङ्गीन विचार और सिद्धान्त इस ग्रन्थमें पूर्णरूपसे पाये जाते हैं।"

—'षट्सन्दर्भ' स. तो. ११।१०

४—'प्रेमतरङ्गिनी' ग्रन्थ क्या अब सहज-प्राप्य है ?

"श्रीमद्भागवताचार्य रचित संस्कृत 'प्रेम-तरङ्गिनी' ग्रन्थ अत्यन्त दुर्लभ है। हमारे निकट एक प्रतिलिपि है जो अक्षर गत भूलोंसे परिपूर्ण है और कई स्थानोंमें कोई अर्थ नहीं निकलता। यदि किसी महापुरुषके निकट इसकी प्रतिलिपि हो, वे कृपा कर उसे दें तो इस ग्रन्थका विचार किया जा सकता है। हम कृताञ्जलि होकर वैष्णवोंसे यह प्रार्थना करते हैं कि वे इस विषय में हमारे प्रति कृपा-दृष्टि करें।"

—'श्रीमद्भागवताचार्य' स. तो. ९।१२

५—ग्राम्य और पारमार्थिक संवादपत्रमें क्या भेद है ? पूर्व महाजनोंकी रचनाओंकी अलौकिकताको कौन जाननेमें समर्थ है ?

"जो सभी संवादपत्र प्रतिदिन नयी-नयी बातें लिखकर पाठकोंको सुख प्रदान करते हैं, वे जड़-विषय सम्बन्धी विचित्र और नयी-नयी बातें कह सकते हैं। हरिकथा वैसी नहीं है। हरिकथा कदापि पुरानी नहीं होती। जितना बार कहा जाय, या सुना जाय, उतना ही उसके द्वारा रसोदय होता है। हे पाठक लोग ! यदि हरिकथामें रुचि हो, तो आप लोग महाजनोंद्वारा रचित ग्रन्थोंका बारम्बार आस्वादन करें। इस पत्रिकाका आकार क्षुद्र होने पर भी इसके प्रत्येक संख्यामें पूर्व-पूर्व महाजनकृत भक्ति-रस-वर्णना और सिद्धान्त विस्तारपूर्वक प्रकाश करना उचित है। जहाँ मनपसन्द कथा आदि न हो, वहाँ परमार्थविद् पण्डितोंकी पूर्व-रचनाका होना आवश्यक है। यह संसार मनपसन्द बातें ही चाहता है; इस श्रीसज्जनतोषणीमें जिस हरि-भक्तितत्त्व और लीलाका थोड़ेसे शब्दोंमें वर्णन पाया जाता है, उसके आस्वादनसे अपना मुख न मोड़ें। हमारी अपनी रचनाकी अपेक्षा पूर्व महाजनोंकी रचनाएँ अधिक आदरणीय होंगी, इसमें सन्देह ही क्या है ?

जो व्यक्ति केवल कुछ थोड़ीसी रचना पढ़नेसे ही सुख प्राप्त करते हैं, उनके लिए पूर्व वैष्णव एवं महाजनोंकी भक्तिपूर्ण रचनाएँ पढ़ना आवश्यक है। क्रमशः उन सभी ग्रन्थोंके रस उनके हृदयमें प्रवेश कर उनके सुखको बढ़ावेगा। दुर्भाग्यके कारण हमें अपनी रचना या नवीन रचना-प्रणाली अच्छी लगती है, किन्तु जब हम लोग गहरे रूपसे पूर्व महाजनोंके रचनामें प्रवेश कर उसमें वर्णित रसका पान करते हैं, तब हमें नयी रचनाएँ क्रमशः अच्छी नहीं लगतीं। इसका मूल-तात्पर्य यही है—हम लोग यह सोचते हैं कि हम पूर्व महाजनोंकी अपेक्षा अच्छी रचना कर सकते हैं; किन्तु जब यह भ्रम दूर हो जाता है, तब हमें नयी रचनाएँ और अच्छी नहीं लगतीं। महान् व्यक्ति और अप्राकृत कवि सब समय

जगतमें नहीं आते। वे अत्यन्त दुर्लभ हैं। इसलिए श्रीजयदेव, रूप गोस्वामी आदिके पश्चात् ऐसे अच्छे कवि देखे नहीं जाते। जब श्रीकृष्णका कोई कृपा-पात्र जगतमें आविर्भूत होंगे, तब हम लोग श्रीगीतगोविन्द, श्रीभागवतामृत आदि ग्रन्थोंकी तरह दूसरे-दूसरे ग्रन्थ देख सकेंगे। वर्त्तमान कवियोंके काव्य या रचनाका पाठ कर सुख मानना केवल 'दूधके अभावमें मट्ठामें मैंने दूधका स्वाद पाया है'—ऐसा समझना मात्र है।

हमारे निकट पूर्व महाजनोंकी रचनाओंकी अपेक्षा और कुछ भी मधुर नहीं जान पड़ती। आहा! हरिभक्तिरसामृतसिन्धुकी अपेक्षा एक भी अधिक शिक्षापूर्ण रसग्रन्थ और कोई भी लिख सकता है? धन्य हैं श्रीरूप गोस्वामी! धन्य हैं श्रीसनातन गोस्वामी! उनकी रचनाकी अपेक्षा मधुर और तत्त्वपूर्ण रचनाएँ हम देख नहीं पाते। हे पाठकवर्ग! आप लोग प्रतिदिन श्रीब्रह्मसंहिता, श्रीकृष्णकर्णामृत, श्रीभागवतामृत आदि ग्रन्थों का रस आस्वादन करें।"

—'निवेदन', स. तो- १० ५

६—क्या श्रील वृन्दावनदास ठाकुर ही बङ्गभाषाके आदि कवि हैं?

"श्रील वृन्दावनदास ठाकुर बङ्गभाषाके आदि कवि हैं। उनके पूर्व श्रीचण्डीदास, श्रीविद्यापति आदि अनेक महात्माओंने गीति-रचना की थी; किन्तु उन लोगोंने कोई भी काव्य रचना नहीं की थी। श्रीमालाधर वसुका ग्रन्थ 'श्रीकृष्ण-मंगल' या श्रीकृष्ण-विजय गीति-रचनामें ले लिया गया है।"

—'श्रील ठाकुर वृन्दावनदास' प्रबन्ध

७—श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षाएँ किन-किन ग्रन्थोंमें पायी जाती हैं? 'श्रीचैतन्य चरितामृत' ग्रन्थ सब प्रकारसे माननीय क्यों है?

"गोस्वामी लोगोंने बहुतसे ग्रन्थोंकी रचना की थी; उनमें श्रीमन्महाप्रभुजीकी शिक्षाएँ प्रचुर रूपमें पायी जाती हैं, किन्तु उनमें महाप्रभुजीके स्व-रचित ग्रन्थ आदि नहीं हैं।

श्रीचैतन्य-चरितामृत प्रामाणिक ग्रन्थ है; उसमें श्रीचैतन्य महाप्रभुजीका चरित्र और उपदेश प्रचुर परिमाणमें पाये जाते हैं। ये सभी उपदेश गोस्वामियोंके वाक्यों द्वारा सम्पूर्ण रूपसे प्रमाणित हुए हैं। इसलिये सर्वत्र ही श्रीचैतन्य-चरितामृतका इतना आदर देखा जाता है। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्य महाप्रभुके कुछ समय पश्चात् आविर्भूत होकर इस महान ग्रन्थ की रचना की। श्रीमन्महाप्रभुजीके साक्षात् शिष्य श्रीरूप गोस्वामी, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी आदि बहुतसे महापुरुषोंने श्रीकविराज गोस्वामीको श्रीचैतन्यचरितामृत रचना करनेमें सहायता प्रदान की थी। उनके पहले श्रीकवि कर्णपूरने 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटकम्' एवं श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने 'श्रीचैतन्य भागवत' की रचना कर श्रील कविराज गोस्वामीको बहुतसे विषयोंमें सहायता प्रदान की

थी। सब प्रकारसे विचार कर हम लोग श्री-चैतन्यचरितामृत अवलम्बन करनेके लिए बाध्य हैं।"

—चै. शि. १।२

८—क्या उपन्यासके रूपमें भी हरिकथा सुनकर जीवोंका किसी प्रकारसे कल्याण हो सकता है ?

"आजकलके व्यक्ति उपन्यास पढ़ना पसन्द करते हैं। होम्योपैथिक औषधकी तरह उपन्यास द्वारा भक्ति-तत्त्वकी शिक्षा देना ही हमारा कर्त्तव्य है। क्योंकि विषयी व्यक्तियोंके चित्तमें थोड़े परिमाणमें तत्त्व कथा प्रवेश करते-करते भक्तिविषयमें श्रद्धा हो सकती है।"

—'समालोचना' स. तो. १०।१२

९—क्या सहजिया-ग्रन्थोंको थोड़ा भी आदर करना उचित है ?

"अमृतरसावली सहजिया ग्रन्थ है। उसमें यह लिखा गया है कि "सहज किसे कहते हैं, समझ नहीं सका। अतएव सहज न उदय होनेसे जन्म वृथा गया।"

ऐसे पुस्तक बाउल और सहजिया लोगोंके पास बहुतसे हैं। मैंने कई पुस्तकें ढूँढ़ते इन ग्रन्थोंको पाया था। पढ़ते-पढ़ते ऐसी घृणा हो गयी कि उन्हें गङ्गाजीमें फेंककर मुझे शान्ति और पवित्रता मालूम हुई।"

—'समालोचना' स. तो. १०।१२

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

ऐसे कब करिहौ गोपाल

ऐसे कब करिहौ गोपाल।
मनसा नाथ मनोरथ-दाता, हौ प्रभु दीनदयाल।
चरननि चित्त निरन्तर अनुरत, रसना चरित रसाल।
लोचन सजल, प्रेम पुलकित तन, गर अंचल कर माल॥
इहि बिधि लखत झुकाइ रहै जम, अपनैं ही भयकाल।
सूर सुजस रागी न डरत मन, सुनि जातना कराल॥

(सूरदासजी)

सन्दर्भ-सार

(श्रीकृष्ण-सन्दर्भ-२७)

श्रीकृष्णने मथुरा पहुँचकर वहाँ काफी समय तक निवास किया। कुछ समय पश्चात् जब वे व्रजमें पुनः जानेका विचार करने लगे, तब उनके मनमें यह विचार उठा— इस समय यदि मैं प्रकट रूपसे व्रजमें जाऊँगा, तो जरासन्ध, शिशुपाल आदि मेरे शत्रु यह समझेंगे कि व्रजके प्रति मेरी अटूट प्रीति है। ऐसा होने पर वे लोग मेरा अनिष्ट करनेके लिए व्रजमें अत्याचार करेंगे। मेरी ऐसी बाहरी उदासीनता देखकर वे लोग यही समझ रहे हैं कि मेरी व्रजवासियोंके प्रति कोई भी सहानुभूति नहीं रही। इसलिए वे लोग व्रजवासियोंके ऊपर अत्याचार नहीं कर रहे हैं। इसलिए मुझे चिन्तामें व्याकुल होनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं अपने विरोधियोंको धोखा देने के लिए ही अभी व्रजमें नहीं जा रहा हूँ।

ये सभी विचार व्यक्त कर वे नित्यसंयोगमयी स्थितिका निरूपण कर रहे हैं—

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ।
दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥
(भा० १०।८२।४४)

श्रीकृष्ण गोपियोंसे कह रहे हैं—

मुझमें भक्ति कर निखिल प्राणी अमृतत्व (नित्य शाश्वत गति) को प्राप्त कर सकते हैं। मेरे प्रति आप लोगोंने जो स्नेह प्रकाशित किया है, उसीके द्वारा आप लोगोंने मुझे प्राप्त किया है। इसलिए वृन्दावनमें नित्यलीला सदा सर्वदा वर्त्तमान है। उस लीलामें तुम लोग भी स्थित हो। मैंने व्रजमें आनेकी जो बारम्बार प्रतिज्ञा की है, उसके अनुसार मैं तुम लोगोंके प्रेमके वशीभूत होकर मधुपुरी (मथुरापुरी) से शीघ्रातिशीघ्र आकर तुम लोगोंको दर्शन दिया करूँगा।

मेरे प्रेममें कोई स्वतंत्रता नहीं है। मैं जहाँ भी क्यों न रहूँ, तुम लोगोंका स्नेह मुझे जबर्दस्ती तुम लोगोंका सहवास प्राप्त कराता है। मैं तुम लोगोंके निकट जाकर प्रेमानुरूप विचित्र लीला-विलासादि करता रहता हूँ। किन्तु तुम लोग उसे केवलमात्र स्फूर्त्ति ही समझती हो।

मैंने उद्धवके द्वारा अप्रकट लीलामें नित्य व्रजमें स्थित होनेका संवाद तुम लोगोंके निकट भेजा है। तुम लोगोंको अध्यात्म शिक्षा नहीं दी गई है, क्योंकि विरहानल द्वारा जले हुए चित्तमें अध्यात्म-शिक्षा द्वारा विरह-संतापकी शान्ति नहीं हो सकती। साधारण भक्तोंके निकट भी वह अत्यन्त तुच्छ है। व्रज गोपियोंके निकट वह नितान्त रसविरोधी है।

उद्धवजीने गोपियोंसे कहा—

श्रूयतां प्रियसन्देशो भवतीनां सुखावहः ।
यमादायगतो भद्रा अहं भर्त्तुः रहस्करः ।।
(भा० १०।४७।२८)

हे माननीया गोपियों ! आप लोग अपने प्रियतमका प्रीतिपूर्ण संवाद श्रवण करो । वह तुम्हारे लिए अत्यन्त सुखदायक होगा । मैं तुम्हारे प्रियतम कृष्णका गोपनीय कार्य करनेवाला किङ्कर हूँ ।

उद्धव द्वारा यह संवाद भेजना अप्रकट लीलामें नित्य स्थितिकी बातको बतलाता है । यह विदुर द्वारा श्री युधिष्ठिर महाराजके निकट लाक्षागृहदहन वार्त्ता भेजनेकी तरह है । केवल युधिष्ठिर महाराज ही उसका रहस्य जानते थे । उसी प्रकार यहाँ भी व्रजसुन्दरियोंने श्रीकृष्ण-संवाद का रहस्य जान लिया था । वे अपने प्रियतमका ऐसा आदेश श्रवण कर अत्यन्त आनन्दित हुई थी । ऐसा होनेपर उनकी स्मृति पुनः जाग उठी, वे उद्धवजीकी पूजा कर उनसे कहने लगीं—

अपेष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा ।
संजीवयन् नु नो गात्रैर्यथेन्द्रो वनमम्बुदः ।।
(भा० १०।४७।४४)

श्रीकृष्णको प्राप्त करनेके लिए हम लोग अत्यन्त व्याकुल और शोक ग्रस्त हैं । जिस प्रकार से इन्द्र पानी बरसाकर सूर्यकी गर्मी द्वारा तपे हुए बनवासी प्राणियों तथा वृक्षादिको पुनर्जीवन प्रदान करता है, वैसे ही वे क्या हमें अपनी हस्त-स्पर्शादि द्वारा पुनर्जीवित करनेके लिए यहाँ नहीं आयेंगे ? अप्रकट अवस्थामें मिलन स्थितिका अनुभव होनेके कारण गोपियोंके हृदय में इस वचनके द्वारा अपार संतोष हुआ था ।

श्रीधाम वृन्दावनमें प्रकट लीलामें जो सभी वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती हैं, वे सभी अप्रकट प्रकाशगत लीलासे भिन्न नहीं हैं । व्रज गोपियाँ भी प्रकट और अप्रकट—दोनों लीलाओंमें वर्त्तमान रहने पर भी उनकी आत्मा दो नहीं है । श्रीवृन्दावन धामके दोनों प्रकाश और गोपियोंके उन दोनों स्थानोंमें एक साथ स्थिति श्रीकृष्णकी इच्छाके ऊपर ही निर्भर हैं । श्रीकृष्ण आश्रय तत्त्व हैं और गोपियाँ आश्रित तत्त्व हैं । आश्रित तत्त्वके बिना आश्रय तत्त्वकी स्थिति नहीं है । इसलिए दोनोंका विच्छेद संभव नहीं है । वे उन्होंने (गोपियोंने) नित्य लीलारूप रहस्यार्थ को जानकर भी पहलेकी तरह प्रकटलीलागत अभिनिवेशके कारण विच्छेद भय पाकर दैन्य प्रकाश करते हुए प्रार्थना की थी –

आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्द-
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।
संसार-कूपपतितोत्तरणावलम्बं
गेहं जुषामपि मनस्युदियात् सदा नः ।।
(भा० १०।८२।४८)

हे पद्मनाभ ! हे प्रियतम कृष्ण ! आपके श्रीचरणकमल गृहासक्त गृहसेविनी हमारे मनमें सदा सर्वदा उदित हों, जिनका अगाध ज्ञान-परायण योगेश्वर लोग हृदयमें चिन्तन किया

करते हैं और संसार रूपी कुएमें गिरे हुए पतित जीवोंके उद्धारके लिए एकमात्र अवलम्बन या आधारस्वरूप हैं।

निष्ठुर विधाताके कोप द्वारा हमारा सर्वनाश हुआ है। हम लोग तुम्हारे दर्शन या दर्शन देनेका संवाद—इनकी अधिक आशा नहीं करती; किन्तु तुम्हारे उपदेशके अनुसार तुम्हारे श्रीचरणकमल हमारे मनमें पूर्णरूपसे उदित हों। चरणोंकी कमलोंसे तुलना देनेका तात्पर्य यही है कि चरणस्पर्श द्वारा ही विरहताप दूर हो सकता है, केवल स्मरण द्वारा नहीं। जो व्यक्ति संसार--कूपमें गिरे हुए हैं, उनका तुम्हारे चरणचिन्तन द्वारा संसार--कूपसे उद्धार हो सकता है, किन्तु विच्छेद द्वारा उत्पन्न दुःख उसके द्वारा दूर नहीं हो सकता। कुएमें गिरा हुआ व्यक्ति साधारण रस्सीको पकड़कर उठ सकता है, किन्तु गंभीर और गहरे समुद्रमें डूबे हुए जीवोंका उद्धार करनेके लिए बड़े जहाजकी आवश्यकता है।

यदि कृष्ण कहें कि तब तुम लोग यहाँ आकर मेरा दर्शन क्यों नहीं कर लेती हो? उसके उत्तरमें कहा गया है – हम लोग गृहसेविनी (दूसरेकी स्त्री या गृहिनी) हैं, अतएव परतन्त्र होनेके कारण हमारे अन्दर वैसा सामर्थ्य नहीं है।

गृहसेविनी पदका दूसरा अर्थ काव्यप्रकाश के इस श्लोक द्वारा दिखलाया जा रहा है—

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपास्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढ़ा कदम्ब-निलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठ्यते ॥

एक नायिका अपने बारेमें कह रही हैं—जो कौमारहर अर्थात् मेरे पति हैं, वे ही मेरे इच्छानुरूप या प्रियतम वर हैं। वह चैत्र मास की रात्रि—मधुयामिनी है, वही मालती कुसुम का गन्धवहन करनेवाला कदम्ब वायु बह रहा है और मैं वही रमणी हूँ जो पहले प्रियतमसे मिलित हुई थी। फिर भी मेरा चित्त सुरतलीला (प्रियतमके साथ मिलन--सुख अनुभव) करने रेवा नदीके तीर स्थित वेतसी वृक्षके तलेमें जाने के लिए अत्यन्त उत्कंठित हो रहा है।

गोपियोंका भी कहना है—तुम्हारा संगम, तुम्हारे साथ पूर्वसङ्गम--विलास जिस स्थानमें सम्पन्न हुआ था, वह श्रीवृन्दावन धाम हमारी इच्छाओंको पूरन करनेवाला है। अतएव गोकुल में ही तुम्हारा सङ्गम प्राप्त करने पर हमारी वासना पूर्ण होगी। प्रकट और अप्रकट दोनों ही लीलाओंमें श्रीकृष्ण सर्वदा गोपियों, गोपों और सभी प्राणियोंके अन्तर्यामी और अध्यक्ष (संचालन करनेवाले) हैं। इसे बतलानेके लिए श्रीशुकदेवजीने कहा था—

गोपिनां तत्पतीनांच सर्वेषामिह देहिनाम्।
योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीड़ने नेह देहभाक् ॥
(भा० १०।३३।३५)

अर्थात् जो भगवान गोपियों, उनके पति तथा सभी देहधारीमात्रके हृदयमें विचरण करनेवाले हैं, वे ही अध्यक्ष हैं; किन्तु फिर भी वे उसमें लिप्त नहीं हैं। अतएव अनादिकालसे ही श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ निरन्तर क्रीड़ा करते रहते हैं।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिसूदेव श्रौती महाराज

श्रीचैतन्य शिक्षामृत

[वर्ष १४, संख्या १-२, पृष्ठ ३९ से आगे]

अतएव श्रद्धा उदित होनेकी कोई निश्चत विधि नहीं देखी जाती । श्रद्धा भक्तिलताका बीज है, यह भी विधिके अतीत तत्त्व है । इसीलिए ऐसा कहा गया है कि सौभाग्यवान जीवको ही श्रद्धा होती है । कर्माधिकारकी परिसमाप्ति तथा श्रद्धाका उदय युगपत् होता है । (क)

२. साधुसंग—श्रद्धा उदय हुई । जीव व्याकुल हो पड़ा । वह निसर्गवशत: अनर्थोंके एकान्त वशीभूत होता है । उन अनर्थोंको कैसे दूर करे—ऐसा विचार कर वह अनर्थ-रहित साधुपुरुषोंका चरणाश्रय ग्रहण करनेके लिए व्याकुल हृदयसे साधु-संगका अन्वेषण करने लगता है और कृष्णकृपासे साधुसंग लाभ करता है । प्रेमोदयका यह प्रथम चिह्न है । (ख)

३. भजन - क्रिया—साधुसंग प्राप्त करनेके पश्चात् श्रद्धालु व्यक्ति हरिकथाके श्रवण, श्रीहरिके नाम रूप, गुण और लीलाओंके कीर्तन और स्मरण आदि भजन-क्रियामें तत्पर हो जाता है । इस प्रकार पूर्वोक्त वैधीभक्तिका अनुशीलन करते-करते इन्द्रियार्थ और वासना—जो अनर्थके मूल हैं—भक्तिके अनुगत हो पड़ते हैं । अनर्थ देहगत होने पर भी वासनाका त्याग कर देते हैं । भजन-क्रिया—प्रेम-प्राप्तिमें द्वितीय क्रम है । (ग)

४. अनर्थनिवृत्ति—विषयासक्ति, पापाचरण, हिंसा, लोभ आदि—ये सब भगवद्भजनके प्रभावसे क्रमश: नष्ट होने पर जीव निर्लोभ हो जाता है । यही अनर्थनिवृत्तिरूप तृतीय क्रम है ।

५. निष्ठा—निर्लोभ होने पर अन्यान्य निष्ठाएँ दूर हो जाती हैं । उस समय श्रद्धा भगवन्निष्ठाके रूपमें बदल जाती है । जबतक अनर्थ रहते हैं, तक श्रद्धा एकनिष्ठा नहीं हो सकती । जितने ही परिमाणमें अनर्थ दूर होते हैं, उतने अधिक परिमाणमें श्रद्धा भी क्रमश: निष्ठा होती चली जाती हैं । प्रेमप्राप्तिमें यह निष्ठा चतुर्थ क्रम है ।

६. रुचि—निष्ठा हो गयी है । भगवदनुशीलन अधिकतर यत्नके साथ हो रहा है । साधुसंग

(क) तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता । मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्नजायते ।। (भा.)

(ख) सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायना: कथा: ।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ।। (भा. ३।२५।२२)

(ग) शुश्रूषो: श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचि: । स्यान्महत्सेवया विप्रा: पुण्यतीर्थ निषेवणात् ।।
शृण्वतां स्वकथा: कृष्ण: पुण्यश्रवणकीर्तन: । हृद्यन्त:स्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत् सताम् ।।
(भा.१।२।१६-१७)

भी अधिक प्रयत्नके साथ चल रहा है। इस प्रक्रियाद्वारा अनर्थ दूर होनेके साथ ही साथ निष्ठामें उल्लासका योग हो पड़ता है। उल्लास-भावसे युक्त निष्ठाका नाम ही रुचि है (क) रुचि —प्रेमप्राप्तिका पाँचवाँ क्रम है। कृष्णमें रुचि होनेसे अन्यत्र सर्वत्र ही अरुचि हो पड़ती है।

७. आसक्ति—रुचिमें आग्रह पैदा होने पर अधिकांशरूपमें अनर्थ दूर होनेपर उस आग्रहयुक्त रुचिको ही आसक्ति कहते हैं। आसक्ति तक ही साधनकी सीमा है। यहाँ साधनका कार्य सम्पूर्ण हो गया। आसक्तिने पूर्णता प्राप्त कर लिया और उसी समय जीव कृतकृत्य हो गया। प्रेमप्राप्तिमें आसक्ति छठा क्रम है। (ख)

८. भाव—आसक्ति पूर्ण हो जाने पर भाव, रति या प्रेमांकुर कहलाती है। आसक्ति भी शुद्धसत्त्वरूप नहीं होती। भाव शुद्धसत्वस्वरूपता को प्राप्त करता है। भावावस्थामें चित्त-द्रवता उपस्थित होती है। यही प्रेमका सप्तम क्रम है। (ग)

९. प्रेम—भाव ही अनन्यमयताको प्राप्त होने पर प्रेम कहलाता है। यही रसोपयोगी स्थायी भाव है।

साधक सर्वदा अपनी अवस्थापर लक्ष्य रखेंगे। उनको यह विचार करना चाहिए कि वे कल किस भावमें थे और आज वे किस रूपमें हैं, अर्थात् कुछ उन्नति हुई या नहीं—इस पर सर्वदा विचार करना चाहिए। कुछ दिन लक्ष्य रखने पर यदि ऐसा प्रतीत हो कि क्रमिकगतिके अनुसार कुछ भी उन्नति नहीं हुई, तो ऐसा समझना चाहिए कि कहीं कुछ अपराध हो गया है। ऐसा निश्चय कर उस अपराधको ढूँढ़ कर दूर करना चाहिए तथा सत्संगद्वारा उस अपराध द्वारा जो हानि हुई है उसे पूर्ण कर लेनी चाहिए। सब समय अनुशीलन तथा श्रीकृष्ण-प्रार्थना करते हुए पुनः वह अपराध न हो, इस विषयमें सावधान रहना चाहिए।

(क्रमशः)

(क) एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धयेतसस्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायते।

(ख) तत्रान्वहं कृष्ण कथाः प्रगायतामनुग्रहेणाशृणवं मनोहराः।
ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विशृन्वतः प्रियश्रवस्याङ्ग ममाभवद्रतिः॥ (भा. १।५।२५-२६)

(ग) इत्थं शरत् प्रावृषिकावृतु हरेर्विशृण्वतो मेऽनुसवं यशोऽमलम्।
संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभिर्भक्तिः प्रवृत्तात्मरजस्तमोपहा॥ (भा. १।५।२८)
तदा रजस्तमो भावाः कामलोभादयश्च ये। चेतसेतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति॥ (भा.)
रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। (तैत्तिरीय उप.)

परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवका

नित्य-लीलामें प्रवेश

अत्यन्त असीम तथा तीव्र विरह वेदना का अनुभव करते हुए और मर्माहत हृदयसे हमारे पाठकोंको यह सूचित किया जा रहा है कि गत १९ आश्विन, ६ अक्टूबर, रविवारके दिन सायंकालके ६ बजकर १५ मिनटके समय श्रीशारदीया रास-पूर्णिमाकी परम शुभ तिथिके अवसर पर भारतवर्ष व्यापी श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति के प्रतिष्ठाता और आचार्यदेव अस्मदीय श्रीश्रील गुरुपादपद्म परमाराध्यतम परमहंस स्वामी ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद् भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज श्रीश्रीनवद्वीप धामस्थ श्री देवानन्द गौड़ीय मठमें इस धराधामका परित्यागकर श्रीश्री राधाकृष्णकी नित्य लीलाके अन्तर्गत दिनन्दिनी सायंकालीन लीलामें प्रवेश कर गये। इस अवसरपर चन्द्रग्रहण था और वहाँ उपस्थित सभी वैष्णवगण उच्च तथा सुमधुर स्वरसे श्रीहरिसंकीर्त्तन कर रहे थे। श्रीहरिसंकीर्त्तन-रस सुधाका श्रवण-पुटों द्वारा पान करते हुए तथा श्रीगौरनित्यानन्द और श्रीराधाकृष्णका नाम लेते हुए ये अतिमर्त्य तथा अमित तेजस्वी महापुरुष इस मर्त्यशील धराधामका परित्याग कर भगवान श्रीकृष्णके नित्य धाम गोलोकधाम वृन्दावनके लिए पधार गये। इस अवसर पर जगदगुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके कई प्रतिष्ठित संन्यासीगण तथा शिष्य लोग उपस्थित थे। परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुदेवके सतीर्थ गुरु भ्रातागण और विभिन्न मठोंके आचार्यगण पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव महाराज, पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिस्वरूप सिद्धान्ती महाराज, पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज, पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिसौरभ भक्तिसार महाराज, पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिविचार जाजावर महाराज, पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिकेवल उडुलोमी महाराज, पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिविलास तीर्थ महाराज, पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति कुमुद श्रमण महाराज, पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी भक्ति जीवन जनार्दन महाराज, पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराज इत्यादि प्रमुख वैष्णवों तीव्र विरह वेदना प्रकाश किया है और हम लोगोंके प्रति विशेष सहायता और सहानुभूति दिखलाया है।

अस्मदीय परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुपादपद्म विश्वव्यापी श्रीश्रीगौड़ीय मठ और श्रीविश्ववैष्णव राजसभाके प्रतिष्ठाता श्रीगौर पार्षद प्रवर, श्रीश्रीराधाकृष्णके परम प्रेष्ठ निजजन ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धान्त

सरस्वती ठाकुरके परम प्रियतम शिष्य तथा निजजन थे। वे उनकी अन्तरङ्ग इच्छाओंको पूर्ण करते थे। इन महापुरुषका इस प्रकारसे अपनी लीला संवरण करना केवल श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ही नहीं, बल्कि सारे श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय तथा भारतवर्षके लिए महान् दुर्भाग्य और गहरे दुःखका विषय है जिसे शब्दों द्वारा व्यक्त करना असम्भव है। इस विच्छेदसे उत्पन्न क्षति अपूरणीय है। इन महापुरुषका वयः क्रम ७२ वर्ष था।

इस भूलोकमें, विशेषकर भारतवर्षमें मानव जन्म प्राप्त करना अत्यन्त सौभाग्यकी बात है। यह मनुष्य योनि विभिन्न प्रकारकी योनियोंमें भ्रमण करनेके पश्चात् अकस्मात् ही प्राप्त होता है। तिस पर भी मनुष्य योनिको प्राप्त कर परम सौभाग्यवान व्यक्ति ही पूर्व जन्मार्जित सुकृतिके प्रभावसे साधुसंगमें रुचि प्राप्त करते हैं। उसमें भी भगवानके परम प्रेमी भक्तोंका संग प्राप्त करना किसी-किसी विरले व्यक्तिके लिए ही सम्भवपर है। अतएव शास्त्रोंमें कहा गया है—

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्॥

अर्थात् यह अत्यन्त अनित्य और क्षणस्थायी मनुष्य शरीर प्राप्त करना अत्यन्त कठिन और दुर्लभ है। उस मनुष्य शरीरको प्राप्त करके भी वैकुण्ठप्रिय (अनन्त एवं अचिन्त्य लीलाविलास करनेवाले भगवान्‌के प्रियतम) व्यक्तियोंका दर्शन एवं संग प्राप्त करना और भी कठिन है। हमारे श्रीश्रील गुरुपादपद्म ऐसे ही महापुरुषोंमें से एक थे। वे निर्भीक स्वभावसम्पन्न और कठोर सत्यवादी थे। किन्तु संसार तापसे दग्धीभूत जीवोंके लिए परम करुणा और दयासे परिपूर्ण थे। अतएव उत्तररामचरितमें महाकवि भवभूतिजी कहते हैं—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमीश्वरः॥

अर्थात् अलौकिक महापुरुषोंका चित्त वज्रकी अपेक्षा भी कठोर और कुसुमकी अपेक्षा भी कोमल होता है। उनके लोकोत्तर (लोकातीत या असामान्य) चित्तको कौन व्यक्ति समझने में योग्य हो सकता है? ऐसे ही महापुरुषोंमें से वे एक थे। उनकी वाणी, उनका चरित्र, उनके आचार-विचार आदि शास्त्रके इस वचनका साक्षात् प्रमाण देते थे—

इहा यस्य हरेर्दास्ये मनसा कर्मणा गिरा।
निखिलासुऽप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः तदोच्यते॥

अर्थात् जिस व्यक्तिने सभी अवस्थाओंमें स्थित होकर भी काय, मन, वचनसे अपनी सभी वृत्तियोंको भगवान हरिकी सेवामें नियुक्त कर दिया है, वह जीवनमुक्त कहलाता है।

भारत भूमिमें जन्म लेकर परोपकार करना ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है। श्रीचैतन्य-

चरितामृतमें श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी कहते हैं—

भारत भूमिते मनुष्य जन्म हैल जार।
जन्म सार्थक करि करो पर-उपकार॥

श्रीमद्भागवतमें भी कहा गया है—

एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय आचरणं तथा॥

अर्थात् मनुष्य जीवन प्राप्त कर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्यके द्वारा दूसरे व्यक्तियोंके प्रति श्रेयः आचरण करनेमें ही जीवनकी सार्थकता है, वे इस कथनके अत्यन्त श्रेष्ठ और परम उज्ज्वल उदाहरण थे। शास्त्रोंमें सत्गुरुके आठ प्रकारके लक्षण बतलाये गये हैं—

कृपासिन्धुः सुसम्पूर्णः सर्वसत्वोपकारकः।
निस्पृहः सर्वतःसिद्धः सर्वविद्याविशारदः॥
सर्वसंशयसंच्छेत्ताऽनलसो गुरुराहृतः॥

अर्थात् जो संसार दावानलदग्ध मायाबद्ध जीवोंके प्रति अपार करुणाशील हैं और दयायुक्त हैं, जो अपने स्वरूपसिद्ध भगवानकी सेवा द्वारा परिपूर्ण हैं, जो सर्वगुणोंसे परिपूर्ण हैं, जो जीव-मात्रके कल्याण करनेमें सदा सर्वदा निरत हैं, जो निष्काम (भगवानके प्रीति-विधानकी कामना छोड़कर अन्य कामनारहित) हैं, जो सब प्रकार से पूर्णतः सिद्ध हैं, जो सर्वविद्यारूपी ब्रह्मविद्या या भक्ति सिद्धान्तमें सुनिपुण हैं, जो अपने शिष्य के सभी सन्देहोंको दूर करनेमें पूर्ण समर्थ हैं और आलस्यरहित अर्थात् सदा सर्वदा हरिसेवा में नियुक्त हैं, ऐसे महापुरुष ही गुरु कहलाने योग्य हैं। ये सभी लक्षण इन अतिमर्त्य और परम तेजस्वी महापुरुषके जीवन और चरित्रमें पूर्णरूप से लक्षित होते थे। शिव-पार्वतीके संवादमें शिवजी कहते हैं—

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः।
दुर्लभो सद्गुरुर्देवि शिष्यसंतापहारकाः॥

अर्थात् हे देवि ! ऐसे बहुतसे गुरु हैं कि जो कि शिष्यके वित्तको हरण कर सकते हैं; किन्तु ऐसे गुरु दुर्लभ है जो शिष्यके सन्ताप (जन्म मरण-चक्र दुःख) को दूर सकते हैं। हमारे परमाराध्यतम श्रीश्रीगुरुपादपद्म ऐसे ही महा-पुरुषोंमें से एक थे। उनके अनन्त गुणोंकी वर्णना करना हमारे सामर्थ्यके बाहर है; केवल अपनी वाणीको सार्थक करनेके लिए यह तुच्छातितुच्छ पुष्पांजलि अर्पित की जा रही है।

महापुरुषोंका इस संसारमें सर्वदा आगमन नहीं हुआ करता। जब-जब भगवानकी इच्छा होती है, तब-तब ही ऐसे महापुरुष लोग इस संसारमें आकर मायाबद्ध जीवोंका कल्याण करते हैं। इन लोगोंका संग परम सौभाग्य और भगवानकी कृपा द्वारा ही प्राप्त होता है। हम लोग ऐसे महापुरुषोंको समझ नहीं पाते; उनके क्रिया-कलाप, उनके चरित्र आदिमें अपना एक वैशिष्ट्य होता है। इसलिए हम लोगोंका परम सौभाग्य है कि हम लोगोंने भारतवर्षमें जन्म लिया। भारतवर्ष महापुरुषोंकी जननी है। महा-

पुरुष लोग जन्ममरणसे अतीत हैं। उनके क्रिया-कलाप, जीवन-चरित्र, शिक्षा-विचार आदि अलौकिक होते हैं। हमें अत्यन्त विमुख और अपराधी देखकर ही शायद इन महापुरुषने संसारमें ज्यादा दिन रहना उचित नहीं समझा। हम लोगोंके भाग्यमें केवल इतना ही दिन उनका संग लिखा था; सो हम लोग उनके परम दुर्लभ और परम श्रेयः प्रदानकारी संगसे वंचित रह गये।

अगले अङ्कमें इन महापुरुषके जीवन-चरित्र की विशेषताएँ, अलौकिक व्यक्तित्व, परमादर्श जीवनी, शिक्षा-विचार, अन्यान्य वैष्णव आचार्यों से उनका वैशिष्ट्य आदिकी विस्तारपूर्वक आलोचना की जायगी। आखिरमें इन महापुरुष के श्रीचरणकमलोंमें हमारी यही कातरपूर्ण प्रार्थना है कि वे अपनी आदर्श-जीवनी और अलौकिक व्यक्तित्वके द्वारा हमें भी अनुप्राणित करें जिससे हम सर्वदा उनके श्रीचरणकमलोंकी नित्यसेवामें नियुक्त रहें।

—श्रीकुंजविहारीदास ब्रह्मचारी

भक्तका जीना ही सार्थक है

जीवितं वरं विष्णुभक्तस्य पंचदिनानि।
न तु कल्पसहस्राणि भक्तिहीनस्य केशवे॥

अर्थात् अगर विष्णुभक्त (या कृष्णभक्त) पाँच दिनों तक जीवित रहें, तो उसीका जीना सार्थक है। भगवान केशव (श्रीकृष्ण) में भक्तिरहित व्यक्ति अगर हजारों कल्प (ब्रह्मा का एक दिन, जिसमें हजार चतुर्युग होते हैं) तक जीवित रहें, तो उसका जीना वृथा है।

श्रीगोपालचम्पूका प्रतिपाद्य विषय

[यह "श्रीगोपालचम्पूः" ग्रन्थ श्रीचैतन्य महाप्रभुके पार्षद परमपूजनीय श्री जीव गोस्वामी द्वारा विरचित है। सरल एवं सरस हिन्दी टीका सहित श्रीसर्वेश्वर प्रेसमें छप रहा है। पहला खण्ड छपकर तैयार है। दूसरा खण्ड भी साथ-साथ ही छप रहा है। दोनों खण्ड 'कल्याण' के साइज के १८०० पृष्ठोंकी ठोस सामग्रीसे परिपूर्ण हैं। सर्वश्रेष्ठ कागज एवं छपाई बहुत स्वच्छ तथा विशुद्ध है। एकसाथ दोनों खण्डों को लेनेवाले ग्राहकोंके लिये दोनों खण्डों का अग्रिम मूल्य २५) रुपया है। अलग-अलग खण्ड लेनेवालों के लिये प्रत्येक खण्ड का मूल्य १६) रुपया है। डाकखर्च पृथक् है। इसके पाँचसौ ग्राहक बन चुके हैं। केवल १००० प्रतियाँ छपी हैं। अतः प्रेमी ग्राहकों से निवेदन है कि जो ग्राहक बनना चाहें, वे २५ रुपया अग्रिम भेजकर अपना प्रति सुरक्षित करवालें। पहला खण्ड २५) रुपया आते ही सेवामें भेज दिया जायगा। प्राप्ति स्थान—श्रीवनमालिदास शास्त्री, श्रीकृष्णानन्द स्वर्गाश्रम, पो० वृन्दावन, जि० मथुरा, उ० प्र० ।]

—सम्पादक

आत्मारामान्मधुरचरितैर्भक्तियोगे विधास्यन्
नानालीलारसरचनयाऽऽनन्दयिष्यन् स्वभक्तान् ।
दैत्यानीकैर्भुवमतिभरां वीतभारां करिष्यन्
मूर्तानन्दो व्रजपतिगृहे जातवत् प्रादुरासीत् ॥

भगवान्‌के साथ जीवका शुद्ध प्रेममय सम्बन्ध ही सर्वश्रेष्ठ है। श्रीहरिने उद्धवके प्रति कहा भी है—हे उद्धव ! देखो, मैं श्रद्धापूर्वक की हुई शुद्ध प्रेमलक्षणा भक्तिके द्वारा ही प्राप्त होता हूँ। अतः इस प्रकारका सम्बन्धविशेष ही प्रेमविशेषका कारण है। श्रीहरिने अर्जुनके प्रति गीतामें भी कहा है—हे अर्जुन ! जो व्यक्ति जिस भावसे मेरा आश्रय लेते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार के अभीष्ट फल देकर अनुगृहीत करता हूँ। अतः वात्सल्य नामक प्रेम ही भगवान्‌में पुत्रभावको उत्पन्न कराता है।

भगवान्‌में अधिक ऐश्वर्य विचारके कारण श्रीवसुदेवजीका वात्सल्य भाव श्रीनन्दजीकी अपेक्षा न्यून एवं ऐश्वर्यज्ञानमिश्रित है। किन्तु श्रीनन्दजीका वात्सल्य भाव निरन्तर वृद्धिको प्राप्त होता हुआ भी विशुद्ध ही रहता है। पुत्र भाववाले भक्तोंके मनमें ही भगवान् धारण किये जाते हैं, किन्तु प्राकृत बालककी तरह गर्भाशय में नहीं। दशमस्कन्धमें कहा भी है कि—"भगवान् अंशकलाओंके सहित श्रीवसुदेवजीके मनमें प्रविष्ट हो गये। इसी प्रकार "पूर्वदिशा जिस प्रकार चन्द्रमाको धारण करती है, उसी प्रकार

श्रीदेवकीमाताने भी सर्वान्तर्यामी प्रभुको मनसे ही धारण कर लिया, अतः श्रीनन्द एवं श्री यशोदाके द्वारा भी उन परमार्थमय प्रभुका मनसे ही धारण हुआ है। वह धारण भी विशुद्ध भक्तिमय स्वभावसे ही संभव है। क्योंकि देखो, श्रीकृष्णके प्रति व्रजवासियोंका जो अपनापन है, वह सबकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होकर भी सदा एकरस ही बना रहता है। क्योंकि जिस हृदय में श्रीकृष्णके अतिरिक्त और किसी प्रकारकी चेष्टा नहीं रह जाती, उसी स्नेहमय हृदयमें ही श्रीकृष्ण निवास करते हैं। फिर जिनके सर्वाङ्ग में ही स्नेह व्याप्त है, उन व्रजवासियोंके हृदयमें तो वे अप्रत्यक्षमें की गई भावमुद्रासे भी प्रतिक्षण प्रतिबिंबित होते रहते हैं। पुत्रभावसे प्रकट होने में पितृभावमय स्नेह ही कारण है, अन्य साधारण जनोंकी तरह रजवीर्य आदिका संयोग नहीं; अर्थात् देहसे उत्पन्न होनेपर भी पुत्रभाव सम्भव नहीं है, किन्तु पुत्रके प्रति पिता का जो अधिक स्नेह है, वही पुत्रभावका मूल कारण है। देखो देहसे उत्पन्न होने मात्रसे यदि पुत्रभाव माना जाता, तो ब्रह्माकी नासिकासे वराहदेवकी उत्पत्ति एवं सभाके स्तंभसे नृसिंहदेवकी उत्पत्ति हुई है; अतः उनको भी ब्रह्माका पुत्र एवं स्तभ का पुत्र कहा जाता। अतः भगवान्‌के प्रादुर्भाव का प्रधान कारण विशुद्ध वात्सल्यमय भाव ही है।

इस प्रकारके भगवल्लीला सम्बन्धी अनेक सिद्धान्त निखिलशास्त्रपारावारीण श्रीजीव गोस्वामी द्वारा विरचित "श्रीगोपालचम्पूः" नामक अतिशय विशाल ग्रन्थमें प्रमाण-प्रमेय क्रमसे वर्णित है। सभी लीलाप्रसंग सरसता एवं सरलतासे निरूपित है। इसकी रचना श्रीमद्भागवतके सम्पूर्ण दशमस्कन्धके अनुसार है। संसारमें आजतक जितने चम्पूग्रन्थ लिखे गये हैं, उनमेंसे आकार प्रकारमें 'श्रीगोपालचम्पूः' अभूतपूर्व है। इसकी रचना शैली अपूर्व है। इसके वक्ता श्रोता भी आश्चर्यमय हैं। इसका कथा प्रसङ्ग श्रीगोलोकमें हुआ हैं। प्रातःकाल श्रीनन्दजीकी सभामें एवं रात्रिमें श्रीराधिकाकी सभामें हुआ है। दिन की कथामें श्रीनन्द आदि सभी गोपगण श्रीकृष्ण-बलदेवके सहित श्रवण करते हैं। वहीं पर एक ओर जालीदार परदे की बनी हुई बैठक में बैठकर श्रीयशोदा, रोहिणी एवं श्रीराधिका आदि सभी गोपियाँ श्रवण करती हैं। गोपियों को कथावाचकका दर्शन होता रहता है, परन्तु अन्य सभासद् गोपियोंको नहीं देख पाते। रात्रि की सभामें श्रीराधा-कृष्ण, पौर्णमासीदेवी जो योगमायाकी अवतार हैं, वृन्दावनाधिष्ठात्री वृन्दादेवी, ललिता, विशाखा तथा चन्द्रावली आदि सभी गोपियाँ उपस्थित होती हैं। समयानुसार सुबल एवं मधुमगल आदि कुछ प्रियनर्मसखा भी कभी-कभी उपस्थित हो जाते हैं। किन्तु यशोदा, रोहिणी आदि वात्सल्यभाव की गोपियाँ वहाँ नहीं आतीं। क्योंकि शृङ्गाररस प्रधान रासलीला आदि कथाएँ रात्रिकी सभामें होती हैं। अन्य सब कथाएँ दिनकी सभामें होती हैं। इस ग्रन्थमें रस एवं भाव की मर्यादाकी ओर विशेष ध्यान दिया गया है। इसके वक्ता मधु-

कण्ठ एवं स्निग्धकण्ठ नामक दो सूतपुत्र हैं। ये दोनों भाई नलकुबर एवं मणिग्रीव नामके प्रसिद्ध कुबेरके पुत्र थे जो श्रीनारदजीके शापसे ब्रजमें यमलार्जुन नामक वृक्ष हुए थे। इनका उद्धार श्रीकृष्णने दामबन्धन-लीलामें किया था। वृक्ष-योनिसे मुक्त होते ही इन्होंने श्रीकृष्णसे "वाणी-गुणानुकथने" इत्यादिरूपसे जो वर माँगा था, वह श्रीकृष्णद्वारा प्राप्त हुआ। श्रीकृष्णकी गोलोक प्रवेश-लीलाके अनन्तर ये दोनों गोलोकमें प्रविष्ट हुए। इनका सम्पूर्ण चरित्र पूर्वचंपूके द्वितीय पूरणमें एवं कुछ अंश नवम पूरण में है।

यह श्रीगोपालचम्पू पूर्व एवं उत्तरके भेदसे दो भागोंमें विभक्त होकर, पुनः तीन-तीनके भेद से छः भागोंमें विभक्त है। पृथक्-पृथक् ग्रन्थरूप है। अर्थात् तैंतीस पूरणवाली पूर्वचम्पू 'गोलोक विलास', 'बाल्यविलास', एवं 'कैशोरविलास' इन तीन भागोंमें विभक्त है। और सैंतीस पूरण-वाली उत्तरचम्पू 'प्रथमविलास', 'द्वितीय-विलास', 'तृतीयविलास'-रूप तीन भागोंमें विभक्त है।

इसकी रचना-शैली इतनी विचित्र है कि पूर्वचम्पूकी समस्त कथा उत्तरचम्पूमें, एवं उत्तर-चम्पूकी सारी कथा पूर्वचम्पूमें दृष्टिगोचर होती है। पद पदमें सुस्वादु है और 'भट्टिकाव्य' जिस प्रकार समस्त पाणिनीय व्याकरणका उदाहरणस्वरूप है, उसी प्रकार 'गोपालचम्पू' भी है।

प्रायः सभी काव्य, अलंकार, नाटक, चम्पू देखे गये हैं; उनमें जो शब्द कहीं भी प्रयुक्त नहीं हुए, वे हजारों अप्रयुक्त शब्द इसमें प्रयोग किए गए हैं। वनौषधिवर्गको छोड़कर समस्त 'अमर-कोष', 'मेदिनीकोष' एवं 'त्रिकाण्डशेष' के प्रयोग यथेष्ट प्रयुक्त हैं। अनेक विरुदावलियों, अलंकार एवं छन्द से यह परिपूर्ण है। 'गीतगोविन्द' के से सैकड़ों गीत भी इसमें विद्यमान हैं। नाटकों की सी छटा इसमें पद-पदपर दिखाई देती है। यह सर्वाङ्गसुन्दर एवं परिपूर्ण है। यह केवल दशमस्कन्धका ही भाष्यस्वरूप नहीं है, अपितु समस्त पुराणोंका ही भाष्यस्वरूप है। इसके अध्ययनसे श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण, लीला, एवं धामका तत्त्व हस्तामलककी तरह जाना जा सकता है। अधिक क्या कहें? इसी श्रीवृन्दावनमें विद्यमान चर्मचक्षुओंके अगोचर 'श्रीगोलोक' का भी स्वरूप ज्ञान यथार्थ रूपमें हो सकता है।

—श्रीवनमालीदास शास्त्रीजी (वृन्दावन)

———